Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 1 | May 2025 - October 2025 | pp. 13-17

मीरां की कविता और सामंतवाद

डॉ. विशाल विक्रम सिंह

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भक्ति आंदोलन भक्ति को व्यावहारिक धरातल पर स्थापित करता है। भक्ति को दार्शनिक सिद्धांतों, पुरोहितों और ग्रंथों के बगैर सामान्य जन के लिए संभव बनाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी भक्ति को भावनात्मक अनुभूति के रूप में स्वीकार किया है। प्रेम, समर्पण श्रद्धा और अहम का विलयन - भक्ति के जरूरी तत्व हैं। इन्हीं अर्थों में भक्ति निर्बलों का सहारा है। भक्ति निर्बलों के दुख की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। मीरां की भक्ति में इन संदर्भों के साथ - साथ ज्ञान का भी समावेश है। ज्ञान से विश्लेषण और विचार पैदा होते हैं। इसीलिए मीरां की भक्ति में तत्कालीन सामंती परिस्थितियों के प्रति विद्रोह है। जिस सामंतवाद में स्त्री वस्तु और भोग्या से अधिक महत्व नहीं रखती उसके प्रतीक राणाशाही के सामंती मूल्यों प्रति विद्रोह। मीरां की भक्ति में स्त्री जाति के वेदना की अभिव्यक्ति है। इसीलिए उनकी कविता शताब्दियों बाद भी लोक की जबान पर है। उनकी कविताएं सांस्कृतिक प्रतिरोध की कविताएं हैं और भक्ति के कैनवास को बृहत्तर आयाम प्रदान करती हैं। मीरां अन्य भक्त कवियों से इस मामले में अलग हैं कि उन्होंने उत्पीड़क की न सिर्फ पहचान की अपितु उसे वस्तुनिष्ठ ढंग से संबोधित भी किया। मध्यकाल में यह अद्वितीय साहस का उदाहरण है। इन संदर्भों को समझने के लिए यह शोध पत्र प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर—*सामंतवाद, भक्ति, प्रतिरोध, वेदना, प्रेम*

प्रस्तावना

प्रश्न है 'भक्ति क्या है?' दार्शनिक प्रपत्तियों में सामान्य जन की सीमित जिज्ञासा है। वह भक्ति के दार्शनिक मतवादों में न पड़कर 'भक्ति रस' का पान करता है। 'भक्ति' का जागतिक संदर्भ क्या है? व्यवहार जगत में वे सामान्य तत्व क्या हैं जो भक्तों में प्रायः मिलते ही हैं? 'भगवद्गीता' के संदर्भ से इतिहासकार सुवीरा जायसवाल लिखती हैं "भगवतगीता" में भक्ति का तात्पर्य परमात्मा के प्रति विशुद्ध प्रेम से है, जो यद्यपि अपने भीतर सम्पूर्ण विश्व को धारण किए हुए है तथा अकल्पनीय है, तथापि एक ऐसा साकार एवं अर्चनीय रूप रखता है, जिसके साथ उपासक वैसी घनिष्ठ आत्मीयता के भाव का अनुभव कर सके, जैसी आत्मीयता मित्र और मित्र, पिता और पुत्र, तथा प्रेमी और प्रेमिका के बीच होती है।"[1]

भक्ति का अनिवार्य संबंध व्यवहार धरातल पर प्रेम से है। प्रेम बिना भावना के संभव नहीं है। आचार्य शुक्ल भक्ति को 'धर्म की भावात्मक अनुभूति'[2] कहते हैं। भक्ति प्रेम समर्पण और पूरा भरोसा या श्रद्धा के मेल के बिना संभव नहीं। एक जरूरी तत्व और प्रेम में अहम भाव नहीं हो सकता। कबीर कहते हैं। या तो हरि से प्रेम रहेगा या मैंपन (अहम) रहेगा। प्रेम और अहम् दोनों एक साथ संभव नहीं।

जब हरि था तब मैं नहीं अब हरि है मैं नाहि।
प्रेम गली अति साँकरी लाभ दो न समाहिं।।

ये तत्व—प्रेम, समर्पण, भरोसा या श्रद्धा और अहम त्याग भक्ति के जरूरी उपादान हैं। सामान्य और उत्पीड़ित जन इन्हीं में एक तरह का भावात्मक सहारा पाते हैं।

मीरां के पद भक्त स्त्री के पद हैं। निर्विवाद तथ्य है कि मीरां को राणा और परिवारजनों द्वारा प्रताड़ित किया गया, इसके अन्तःसाक्ष्य उनकी कविता में सर्वत्र मिलते हैं। क्यों प्रताड़ित किया गया? भक्ति के कारण। भक्ति में ऐसा क्या है जिसके कारण प्रताड़ित किया जाय? 'भक्ति के ऐतिहासिक विकास विशेषतः भक्ति आन्दोलन' पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि भक्ति में जानना या ज्ञान अनिवार्य पहलू है। "महाभारत" में एक स्थान पर धृतराष्ट्र "महाभारत" में एक स्थान पर धृतराष्ट्र संजय से जनार्दन (कृष्ण) की भक्ति के सार के विषय में पूछते हैं, जिसका उत्तर उन्हें यह मिलता है कि व्यक्ति को सांसारिक माया में लिप्त नहीं होना चाहिए और मिथ्या धर्म का आचरण नहीं करना चाहिए, अपितु शुद्ध मन से धर्मशास्त्रों का अध्ययन करते हुए तथा उपासना का अभ्यास करते हुए जनार्दन को जानने का प्रयास करना चाहिए।"[3]

ज्ञान वह तत्व है जो विश्लेषण और विचार पैदा करता है। भक्ति का जो सोता दक्षिण में निकला वह उत्तरी भारत तक पहुंचकर ऐतिहासिक कारणों से विद्रोही और आक्रामक हो गया। "उत्तरी भारत में भक्ति की विचारधारा या भक्ति का शास्त्र तो दक्षिण से आया, किन्तु उत्तर भारत में आकर वह दक्षिण जैसा शांत और स्निग्ध नहीं रह गया। उत्तर में वह खरा, आग्रही, अधिक विद्रोही एवं आक्रामक बना। इसके लिए केवल तुर्की का शासन जिम्मेदार नहीं, इसके लिए नाथ-सिद्धों की आत्मविश्वासी और वर्ण व्यवस्था का तीव्र विरोध करने वाली परंपरा जिम्मेदार है।"[4]

मीरां की भक्ति में भावना के साथ ज्ञान का समावेश है। साधुसंगति है, जैसा कि पद्मावती शबनम, विश्वनाथ त्रिपाठी सहित अनेक आलोचकों ने लिखा है। सामंती समाज में स्त्री दूसरे दर्जे की नागरिक होती है। स्त्री को अर्जित ज्ञान, विश्लेषण, अभिव्यक्ति और स्वतंत्र व्यवहार की अनुमति नहीं होती है। राज परिवार की स्त्री सामान्य परिवेश से आए साधुओं की सत्संगति करे—स्वीकार्य बात नहीं है। तो मीरां को प्रताड़ना मिलनी ही थी। यदि मीरां की भक्ति में राणाशाही की आलोचना और साधु सत्संगति न होती तो महल की चारदीवारी में एक विधवा के भजन और नृत्य से आपत्ति ही क्या हो सकती थी?

भक्ति आन्दोलन में जनता के दुःख की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक उपलब्धि है। मुक्तिबोध ने ठीक ही लिखा है कि "समूचे भक्ति आन्दोलन के मूल में जनता के दुःख-दर्द ही हैं और उन दुःख-दर्दों को बड़ी जीवंत मानवीयता के साथ उभारने, उनसे एकमेक होकर सामने आने में ही भक्ति-आन्दोलन की शक्ति को देखा जा सकता है।"[5] रामविलास शर्मा का भी यही विचार है, "संत साहित्य भारतीय जनता के प्रेम, घृणा, आशाओं और वेदना का दर्पण है।"[6]

भक्ति-आन्दोलन की समूची कविता में मालूम होता है कि वेदना भक्ति को मानवीय, उदार और करुणा के धरातल पर स्थापित करती है। वेदना चाहे वर्ण की हो, जाति की हो या जेण्डर की। सामंतवाद से पैदा व्यवस्था में हाशिए का प्रत्येक व्यक्ति प्रायः दुःख पाता है। जो दुःखी है उसका रुदन स्वाभाविक है। जैसे कि कबीर—

दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै।

तुलसी का अपनी तरह का दुःख है। इसकी वेदना कितनी गहरी है कि कहना पड़ा 'दुख भी मुझे देखकर दुखित हो जाता है'—'फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे। (विनय पत्रिका)

मीरां की भक्ति के केन्द्र में वेदना है लेकिन उनकी वेदना अन्य संत-भक्त कवियों से विलग है। संत-भक्त कवियों की वेदना समाज व्यवस्था से पैदा चुनौती से संबंधित है किन्तु उन्हें पारिवारिक प्रताड़ना नहीं झेलनी पड़ी। मीरां समाज और जेण्डर दोनों के मेल से पैदा वेदना का लक्ष्य हैं। वेदना की पराकाष्ठा झेलती हैं। हिन्दी के आलोचकों ने सामंतवाद से टकराती मीरां की जिस अभिव्यक्ति को विशिष्ट माना हो सकता है वह वेदना की इन्हीं परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुआ हो। हद से ज्यादा वेदना मुक्ति की राह की तलाश के लिए साहस भी देता है। अभिव्यक्ति उसका पहला सोपान है। इसी मनोविज्ञान को ग़ालिब ने अपनी तरह से व्यक्त किया है—

अश्रित-ए-क़तरा है, दरिया में फ़ना हो जाना,
दर्द का हद से गुजरना, है दवा हो जाना।[7]

मीरां ने उत्पीड़क राणा का अंकन वस्तुनिष्ठ ढंग से किया है। नाम लेकर। विश्वनाथ त्रिपाठी का अनुमान है कि मीरां की कविता में वर्णित राणा विक्रमजीत सिंह हैं। अनेक पदों में राणा को निडर मीरां ने न सिर्फ संबोधित किया है बल्कि गुणहीन, अयोग्य भी कहा है—

राणा जी थे क्यां ने राखो म्हांसू बैर
थे तो राणा जी म्हाने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में बैर[8]

जिस सामंतवाद ने स्त्री से वस्तु और भोग्या का संबंध रखा मीरां के समक्ष उसके मूर्त प्रतीक राणा की राजव्यवस्था थी। उस व्यवस्था की कुटिलता को मीरां में कविता में कहा। समय के सबसे ताकतवर शासक के पालितो को 'कूड़ा' कहना मामूली साहस की बात नहीं—

"नहिं भावै थारो देसड़लो रंगरूड़ो
थाँरा देसाँ में राणा! साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ो"[9]

अपराध भी बताती हैं—

"राणा जी थे जहर दियो म्हें जाणी"

भक्ति आन्दोलन के दूसरे संत-भक्त कवि नाम लिए बगैर राजसत्ता और धर्मसत्ता के मेल का संयुक्त प्रतिरोध नीतिगत ढंग से कर रहे थे। तुलसी उत्पीड़क शासकों को शाप तो देते हैं लेकिन किस राजा को देते हैं इसका पता नहीं—

राज करत बिनुकाज ही, सजहिं कुसाज कुठाट
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं बारह बाट।।

लेकिन मीरां में वह साहस है जो आज भी दुर्लभ है। 21वीं सदी की पहली चौथाई बीतने और लोकतंत्र के बावजूद बादशाहे-वक्त की वस्तुनिष्ठ आलोचना का साहस बहुत कम बचा है। जन विरोधी और मुंहजोर कहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता लेकिन मध्यकाल के सीमित परिवेश में यह दुस्साहस मीरां ने किया। कहा कि सिंहासन पर मूर्ख बैठे हैं और विद्वान मारे-मारे फिरते हैं—

"मूरख जण सिंघासण राजा, पंडित फिरतां द्वारां
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, राणा भगत संघरां"[10]

कहना न होगा कि मध्यकालीन कवि मीरां में राजसत्ता की आलोचना और अभिव्यक्ति का जो साहस था वह इक्कीसवीं सदी के लोकतंत्र में भी बड़े-बड़े सूरमाओं के लिए यूटोपिया है।

सामंती नियंत्रण की एक संस्था राजसत्ता है तो परिवार अन्य संस्था। जरूरी नहीं कि सामंत विरोधी मूल्यों का पुरुष ही प्रसार करे, पुरुषवादी तंत्र की वाहक स्त्रियों का जोश की कम नहीं। इसलिए जेण्डर से ज्यादा जेण्डर की मुक्तिकामी चेतना का सवाल प्रमुख है। मीरां पर जितने अत्याचार राणा ने किए उससे कम सास और ननद ने न किए।

सास लड़ती है, ननद खिजाती है। मीरां बाहर न जा सके इसलिए उस पर पहरा बिठा दिया है और ताला लगा दिया है—

हेली म्हाँसूँ हरि बिन रह्यो न जाय।
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रह्यो रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठार्यो, ताला दियो जुड़ाय।[11]

सास बुरी है और ननद हठीली। वे दोनों मुझसे लड़ कर प्रताड़ना देती हैं—

सास बुरी अर नणद हठीली लरिलरि दे मोहिं तारी, हे माय।[12]

दुःख की तीव्रता एक हद बाद वहां तक पहुंचती है जहाँ शब्द उसे व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। भयावहता ऐसी होती है कि उसे प्रिय से कहते हुए भी कँपकँपी होती है। आँसू झरने लगते हैं। यही विपत्ति की पराकाष्ठा है—

कलमधरत मेरो कर कंपत है, नैन रहै झड़ लाय।
बात कहूँ तो कहत न आवै, जीव रह्यौ डरराय।[13]

सामंती समाज में प्रेम की छूट थोड़े से सुविधा सम्पन्न लोगों को ही होती। स्त्रियों को अपनी पसंद से प्रेम और प्रेमाभिव्यक्ति की अनुमति नहीं होती है। प्रेम सामाजिक संदर्भों में स्वभावतः यथास्थिति विरोधी होता है। सामंती परिवेश में उदात्त प्रेम सामंतवाद विरोधी तत्व है। स्त्रियों के प्रेमांकुरण पर सामंती संस्थाएं पूरेपन से प्रहार कर उसके दमन का प्रयास करती हैं। प्रेम के सुख की भावना दुःखों के दुर्गम राह से गुजरती है। मीरां ने जिस सादा बयानी से इसे कहा उससे स्पष्ट तौर कहने का कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई देता—

"जोगिया से प्रीत कियाँ दुःख होई"
"जोगियारी प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल"

सामंती व्यवस्था में प्रेम दुःख का उद्गम केन्द्र है। जिसमें दुःख सहने का साहस न हो वह प्रेम न करे—

जौ हूँ ऐसी जानती रे बाला, प्रीत कियाँ दुःख होय।
नगर ढँढोरो फेरती रे, प्रीत करो मत कोय।[14]

एक ऐसी दुनिया जिसमें प्रेम, उदारता एवं अशर्त मनुष्यता सबको मिले—जब संभव नहीं होती तब भी उसका स्वप्न संभव होता है। स्वप्न में यथार्थ की छवि होती है और प्रतिछवि भी। मनुष्यता विरोधी यथार्थ के प्रतिरोध की मूर्त गतिविधियां पहले-पहल स्वप्नों में आकार लेती हैं। ताकतवर सत्ताओं के समक्ष प्रतिरोध संभव न होने पर सांस्कृतिक प्रतिरोध का स्वप्न ही सहारा है। जहां स्वप्न नहीं वहां अन्याय के प्रति संघर्ष नहीं। यह सबसे खतरनाक होता है। पंजाबी कवि पाश ने कहा था—सबसे खतरनाक होता है, सपनों का मर जाना।'

हिन्दी ओालचना में मीरां के गिरधर और जोगी की पहचान को लेकर बहसें हैं। बहसों के तर्क ऐतिहासिक साक्ष्यों से कहे जा रहे हैं। लेकिन सवाल है कि मीरां की कविता में गिरधर, रमैया या जोगी की वस्तुनिष्ठ पहचान महत्वपूर्ण है एवं उनके सहारे कहे गये विचार? कविता में यह ताकत होती है कि वह वस्तुनिष्ठ को भी रूपक और मुक्तिकामी विचार में बदल देती है? फिर गिरधर नागर और रमैया जैसे संबोधन तो भावना के क्षेत्र में अवधारणा ही हैं। गिरधर नागर को संबोधित पदों में उन परिस्थितियों का कामना की गयी है जो यथार्थ नहीं स्वप्न में ही संभव हैं। मीरां अनेक बार कहती हैं कि वे अबला हैं, दुःखी हैं। उन परिस्थितियों से पार पाने को मीरां गिरधर के बहाने स्वप्न देख सकती थीं। जैसी दुनिया मीरां को काम्य है उसका आरोपण वे गिरधर नागर और उनके इर्द-गिर्द की दुनिया पर कर देती हैं। यही उनकी भक्ति की विशिष्टता भी है। गिरधर नागर एक आदर्श हैं। अबला के बल हैं—"म्हां अबला बल म्हारो गिरधर।" अबला की लाज के रखवाले हैं—"मैं अबला बल नाहिं, गोसांई राखो अबके लाज।" स्त्री जाति मात्र की लाज का रक्षक होना सामंती समाज में स्वप्न नहीं तो और क्या है। अन्यथा यह छुपा तथ्य तो नहीं कि स्त्रियों विशेषतः असंरक्षित वर्ग की स्त्रियों को प्रति सामंती मनोभाव कैसा होता है।

जगत में जो व्यवस्थाएं रुदन का कारण हैं उन सबका प्रतिरोध मीरां की भक्ति में समाहित है। इसीलिए गिरधर गोपाल की भक्ति में वे राजी हैं। गिरधरलाल तारनहार हैं—

भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासि मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोहि।[15]

श्याम मनोहर स्त्री को सम्पत्ति समझने वाले नहीं, बल्कि प्रेम पगा मीत हैं—

मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत।[16]

गिरधर लाल की विशेषता मददगार होने की है। वे 'जन' की पीड़ा से उबरने में सहयोगी हैं। उन्होंने द्रौपदी के रूप में स्त्री की मदद की। प्रह्लाद के रूप में भक्त की मदद की। गज के रूप में प्राणि मात्र की मदद की। स्त्री-भक्त-प्राणिमात्र—इससे बाहर कोई नहीं। हरि! 'जन' मात्र के संकट को हरने वाले की प्रतिच्छवि के हैं। 'जहां-जहां जन का दुःख वहां-वहां पीर। कहने की जरूरत नहीं मीरां का दुःख का मूर्त अनुभव सामंती परिवेश से जुड़ा है—

हरि! तुम हरो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यो आप सरीर।
हिरनकश्यप मार लीनो, धर्यो नाहिन धीर।
बूड़ते गज ग्राह मार्‌यो, कियो बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, दुःख जहाँ तहाँ पीर।[17]

ये छवियाँ स्वप्न में ही पूरी हो सकती हैं। जनांकाक्षी भाव के इसी समुच्चय के कारण गिरधर नागर 'पूर्ण वर' हैं।" मीरां के प्रभु गिरधर नागर, वर पायौ छै पूरो।"

मीरां की उपस्थिति के संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "भीलों और निम्नवर्ग में मीराबाई की रचनाएं इतनी लोकप्रिय क्यों हुई? राणा कुल की बहु मीरां ने रैदास या रैदासी परम्परा को, किसी चमार संत को अपना गुरु क्यों बनाया? इसका संबंध भक्ति आन्दोलन की मानवीय भावना से—जो धर्म के सहारे अभिव्यक्त हो रही थी और इसी मानवीयता का संबंध मीरा की रचनाओं से है या कि नहीं? मध्यकाल की, राणाकुल की कोई स्त्री निरंकुश अति 'निडर' होकर लोकलाज, कुल श्रृंखला तज दे, चमार को अपना गुरु बनाए।"[18]

प्रश्न है कि मीरां की कविता में ऐसा क्या है कि वह भीलों, निम्नवर्ग में सेहेजी जाती है? मीरां के गुरु रैदास थे या नहीं इससे जरूरी सवाल यह है कि मीरां को रैदासी परंपरा से क्यों जोड़ा जाता है? वस्तुतः मीरां की कविता मुक्तिकामी स्वप्न की कविता है। जो मुक्तिकामी चेतना स्त्री की मुक्ति में सहायक है वह निम्नवर्ग की मुक्ति में भी सहायक होगी।

सामंती परिवेश में स्त्री और निम्नवर्ग के दुःख एक तरह का बहनापा है। दोनों ही सोशल कैपिटल की तरह बरते जाते हैं। हिन्दी क्षेत्र में मीरां संभवतः पहली स्त्री रचनाकार हैं जिन्होंने सामंती शोषण के खिलाफ मुखर अभिव्यक्ति की है। उनकी कविता 'कैपिटल' होने से इन्कार की कविता है। संभवतः कविता की वर्गीय चेतना के कारण ही निम्नवर्गीय और सीमांत की जनता ने मीरां के आख्यान और कविता को संरक्षित किया होगा।

निकर्ष

मीरा की कविता वर्ग सचेत कविता है। मीरां को अपने स्त्री होने और स्त्री चेतना का भान है। वह सामंत परिवार की स्त्री

हैं। सामंतवाद में स्त्रियों को दुःख गान करने की सुविधा नहीं होती। लेकिन मीरां दुःख की अभिव्यक्ति करती हैं। यह प्रक्रिया अपनी चेतना में वर्गच्युत हुए बिना संभव नहीं। संभवतः यह एक बिन्दु हो सकता है जहां से मीरां की कविता में उनकी पहचान के अंकन को समझा जा सकता है। चेतनात्मक स्तर पर वर्गच्युत होने से पहले का सोपान वर्ग की पहचान है, चाहे यह अवचेतन में ही क्यों न हो? मेड़ता और मेवाड़ की स्थानीयता के साथ मीरां कुल का भी अंकन करती है—"इक कुल राणा त्यारूं, आपणौं, दूजो राइ राठौड़/तीजो त्यारुं राणा मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तौड़।" यह प्रतिष्ठित कुल-वंश परंपरा मीरां की अभिव्यक्ति पर पहरा है। इसलिए उस पहरे को तोड़ती मीरां स्त्री के दुःख और आत्माभिव्यक्ति का मार्ग तैयार करती हैं। चेतना के स्तर पर वर्गव्युत हुए बिना यह संभव नहीं। इसके लिए वे अपने ही कुल-वंश के सामंती प्रतिनिधियों की निमर्म आलोचना करती हैं। फिर अन्य भक्त कवि अपनी कुल-खानदान पर जोर क्यों नहीं देते। ध्यान देने पर स्पष्ट है कि अधिकतर संत-भक्त कवियों के पास सामंती व्यवस्था में स्वीकृत, सम्मानित और उच्च कुल नहीं था तो वे किस विशिष्ट पोजीशन से च्युत होते। संभवतः यह हिस्सा इसीलिए उनके यहाँ नदारद है और अगले सोपान-विश्लेषण और प्रतिरोध से उनकी कविताएं भरी पड़ी हैं। इन्हीं अर्थों में मीरां का संघर्ष ज्यादा विस्तृत है और कविता ज्यादा वस्तुनिष्ठ।

मीरां मध्यकाल की कवि हैं। अनुभवों के आधार उन्होंने प्रतरोध की कविता संभव की। लेकिन उन्हें आधुनिक प्रतिरोधी चेतना से सम्पन्न नहीं कहा जा सकता। पितृसत्ता को लेकर अनेक अन्तर्विरोधों को भी उनकी कविता में पढ़ा जा सकता है। अनेक स्थलों पर सामंतवाद के कुछ रूपों के प्रति नरमी या आकर्षण है। इन सीमित संदर्भों के बावजूद मीरां 21वीं सदी में भी मुक्तिकामी चेतना का जरूरी पाठ है।

सन्दर्भ सूची

1. जायसवाल, सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्‌भव और विकास, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2014, पृ.सं. 122
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, छठवाँ पेपर बैक संस्करण, सं. 2069 वि., पृ.सं. 34
3. जायसवाल, सुवीरा, पूर्वोक्त, पृ.सं. 124
4. त्रिपाठी, विश्वनाथ, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक तीसरा संस्करण, 2014, पृ.सं. 31
5. मिश्र, शिव कुमार, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, परिवर्द्धित संस्करण, 2005, पृ.सं. 06
6. शर्मा, रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 49
7. ग़ालिब, दीवान-ए-ग़ालिब, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौंवी आवृत्ति, 2007, पृ.सं. 51
8. मनोहर, डॉ. शंभु सिंह (सं.), मीराँ पदावली, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, संशोधित संस्करण, पृ.सं. 119
9. उपर्युक्त, पृ.सं. 118
10. उपर्युक्त
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 122
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 145
13. उपर्युक्त, पृ.सं. 148
14. उपर्युक्त, पृ.सं. 113
15. उपर्युक्त, पृ.सं. 105
16. उपर्युक्त, पृ.सं. 130
17. उपर्युक्त, पृ.सं. 137
18. त्रिपाठी, विश्वनाथ, पूर्वोक्त, पृ.सं. 80